राष्ट्रीय आन्दोलन में हिन्दी की भूमिका

डॉ. मीना शर्मा,

पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय

वैसे तो राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की विधिवत शुरुआत सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ हो गई थी किन्तु 20वीं सदी के आरम्भ से इसकी तीव्रता में गुणात्मक परिवर्तन आया। एक आधुनिक राष्ट्र राज्य के रूप में भारत जन्म ले रहा था और उसके साथ ही राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रीय पहचान व अस्मिता का सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय पुर्नजागरण की चेतना भी उभरने लगी थी। राष्ट्रीय जागरण अब सांस्कृतिक जागरण में रूपान्तरित हो रहा था। राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव राजनीतिक जीवन, सामाजिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन और राष्ट्रीय जीवन पर भी पड़ा। भारतीय संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति की टकराहट से उत्पन्न रचनात्मक ऊर्जा ने अपनी पहचान को पाने की आकुलता एवं चुनौती राष्ट्रनायकों के समक्ष रख दी थी। औपनिवेशिक विमर्श से उत्पन्न राष्ट्रीयता की भावना का उदय भारत समेत लगभग सभी गुलाम देशों में हुआ। एक राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रीय भाषा होती है जो उसकी पहचान भी होती है, यह सवाल स्वाधीनता सेनानियों और सुधारकों के मानस को आंदोलित करता था। 19वीं शताब्दी के सुधारकों के समक्ष जब यह प्रश्न उठा कि जो नवीन भारत जन्म ले रहा है उसकी राष्ट्रभाषा क्या हो? तब अनायास ही वे इस निर्णय पर पहुंचे कि नवीन भारत की राष्ट्रभाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है।

राष्ट्रवाद की भावना को संपूर्ण भारत वर्ष के जन–जन में फैलाने के लिए अन्तःप्रान्तीय सम्पर्क की आवश्यकता महसूस की गई तब भी यह महसूस किया गया कि सभी प्रादेशिक पूर्व ग्रहों से ऊपर उठाकर वह (सम्पर्क भाषा) भारतीय भाषा हिन्दी ही हो सकती है। क्योंकि एक बहुभाषी देश में स्वाधीनता की चेतना को प्रत्येक गांव और प्रत्येक आदमी तक पहुंचाने के लिए, राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए हिन्दी की एकमात्र अस्त्र हो कसती है। राजा राम मोहन राय ने भी महसूस किया कि जनता में जाने और उसे आंदोलित करने के लिए अंग्रेजी का कोई उपयोग नहीं। उसे अपनी भाषा के द्वारा ही करना होगा। राष्ट्रीय आजादी के लिए राष्ट्रीय एकता और अखंडता अनिवार्य होता है और राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बांधने वाला सूत्र के बिना यह परिकल्पना साकार नहीं हो सकती। अतः चुनौती कई स्तरों पर थी। उस सूत्र की पहचान करते हुए उस दौर के लगभग सभी राष्ट्रनायकों ने विचार किया। 1875 में ब्रह्मसमाज के प्रधान नेता भी केशवचन्द्र सेन ने कहा कि अभी कितनी ही भाषाएं भारत में प्रचलित है, उनमें से हिन्दी भाषा ही सर्वत्र प्रचलित है। इसी हिन्दी को भारत वर्ष की एकमात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज ही में यह एकता सम्पन्न हो सकती है।'

राष्ट्र निर्माण और भाषा–निर्माण की दोहरी प्रक्रिया समानान्तर रूप से एक–दूसरे से सहयोग करते हुए हो रही थी। हिन्दी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक बन चुकी थी। राष्ट्रीय आकांक्षा, मुक्ति के स्वप्नों को आंखों में लिए नयी सामाजिकता के निर्माण के लिए, भारत की विविधता के इन्द्रधनुषी रंग को एक भाषा के माध्यम से पकड़कर उनमें

अन्तर्निहित सौन्दर्य को उद्घाटित करने के लिए, भाषागत वैविध्य की बाधा को पाटकर उसमें राष्ट्रीय एकता व स्वाधीनता के विचारों को अभिव्यक्त करने का समर्थ और सक्षम माध्यम के रूप में हिन्दी की पहचान हो चुकी थी। इसी को लक्षित करते हुए बंकिम चन्द्र ने कहा कि 'हिन्दी एक दिन भारत की राष्ट्रभाषा होकर रहेगी, क्योंकि हिन्दी भाषा की सहायता से भारत के विभिन्न प्रदेशों में ऐक्य–बांधने स्थापित कर भारत बंधु कहलाने योग्य है।'[1]

भारत के स्वत्व और पहचान के संदर्भ को चिन्हित कर ही राष्ट्रप्रेम को जन–जन में फैलाने के लिए हिन्दी भाषा को माध्यम के रूप में चुना गया तथा इस भारत की समस्त उन्नति का मूलमंत्र घोषित किया गया –

''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
निज बिन भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।''

पहचान का संबंध अतीत से होता है। अतः अपने अतीत के गौरव को पुर्न सृजित कर, अपनी परंपरा का गौरव गान कर भारतीय नवजागरण की भाषा बनने का गौरव हिन्दी को ही जाता है। इस स्वत्व से ही स्वदेश प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, स्वदेशी भाषा और अंततः स्वतंत्रता की प्राप्ति का लक्ष्य इसी नवजागरण और औपनिवेशिक विमर्श की कोख से पैदा होता है। सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने अपनेपन की भावना को गाढ़ापन प्रदान किया। सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में हिन्दी के प्रयोग का प्रश्न इसी औपनिवेशिक विमर्श की प्रसव–पीड़ा से उत्पन्न हुआ था। यही कारण था कि हिन्दी का मसला सिर्फ एक भाषा का मसला न रहकर एक राष्ट्रीय भाषा और एक राष्ट्रीय पहचान का भी था। यही कारण था कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1882 में शिक्षा आयोग के समक्ष इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहा था –

''सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपी का प्रयोग होता है। यही ऐसा देश है, जहां न तो अदालती भाषा..... हिन्दी का प्रयोग होने से जमींदार, साहूकार, व्यापारी और सभी को सुविधा होगी, क्योंकि सभी जगह हिन्दी का ही प्रयोग है।''

हिन्दी भाषा भारत के अधिकांश प्रदेशों और लोगों द्वारा बोली और समझी जाने के कारण एक सार्वदेशिक भाषा के पद पर आसानी से स्थापित होकर राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में कार्य करने लगी। विलक्षण बात यह है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव उन महापुरुषों ने किया जिनमें अधिकांश की मातृभाषा हिन्दी न होकर बंगला, गुजराती, मराठी या कोई और भाषा थी। हिन्दी एवं अहिन्दी भाषी क्षेत्र के इन सभी नेताओं ने इसे सम्मिलित भारत की संस्कृति और राष्ट्रीय भावना का प्रतीक माना। राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र प्रेम को साधने के लिए सुभाषचन्द्र बोस ने भी हिन्दी की भूमिका को रेखांकित इन शब्दों में किया है–**''देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है–देश भर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन का होना। यदि आज हिन्दी मान ली गई है, तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण। वह किसी प्रांत विशेष की भाषा नहीं है बल्कि सारे देश की भाषा है।''**

भाषा की मुक्ति के बिना राष्ट्र की मुक्ति संभव नहीं है। इसलिए भाषा के स्तर पर भी मुक्ति की मांग स्वाभाविक है। अंग्रेज और अंग्रेजी के वर्चस्व को तोड़ना प्रकारान्तर से राष्ट्रीय अस्मिता को प्राप्त करने का ही दूसरा नाम था। अतः कुछ राष्ट्रीय नेताओं ने स्वदेशी को अपनाने और विदेशी के बहिष्कार का संकल्प लेकर और उसे स्वाधीनता की समग्र परिकल्पना से जोड़कर ही स्वदेशी वस्तु, स्वदेशी भाषा, स्वराज्य, स्वतंत्रता (स्वयं का तंत्र) को विकसित करने की मांग करने

लगे। क्योंकि भाषा की स्वायत्तता के बिना मानसिक स्वराज्य संभव लगे। शिक्षा, प्रशासन, न्याय आदि सभी क्षेत्रों में हिन्दी को लागू करने की मांग जोर पकड़ने लगी। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा विदेशी दासता का प्रतीक मानी जाने लगी और हिन्दी हिन्दुस्तान की पहचान तथा हिन्दुस्तान की आत्मा के रूप में –

'हिन्दी है हम वतन है हिन्दोस्तान हमारा'

पूरे भारत वर्ष के स्वाधीनता सेनानियों ने हिन्दी और हिन्दुस्तान को अभिन्न समझकर ही राष्ट्रप्रेम के साथ–साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की। राजनीतिक पार्टी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसी भावना को केन्द्र रखकर अपने विशेष अधिवेशन में हिन्दी के पक्ष में प्रस्ताव पारित कर अपनी कार्रवाई हिन्दी में करने का फैसला किया। सन् 1906 में कांग्रेस अधिवेशन में दादा भाई नौरोजी ने प्रथम बार 'स्वराज्य' हिन्दी शब्द का प्रयोग किया। बाद में तिलक ने इसे विकसित करते हुए जोरदार शब्दों में कहा–'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' तिलक के ये वाक्य पूरे भारत वर्ष में एक नारे के रूप में लोगों के दिलों में गूंजने लगी। स्वराज्य की प्राप्ति की यह चिंगारी अब आम लोगों से जुड़ने लगी। जो कांग्रेस पढ़े–लिखे लोगों की पार्टी थी उससे आम लोगों के जुड़ने और जोड़ने में, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को व्यापक आधार देने में हिन्दी एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित हुई है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को करोड़ों निरक्षर लोगों ने निरक्षर स्त्रियों और भूख लोगों को रवराज्य से जोड़ने की भाषा महात्मा गांधी ने हिन्दी को ही समझा। गांधीजी की स्पष्ट मान्यता थी कि भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है –

''यदि स्वराज्य अंग्रेजी पढ़े–लिखे भारतवासियों का है और केवल इनके लिए है जो सम्पर्क भाषा अवश्य–अंग्रेजी होगी। लेकिन यदि वह करोड़ों निरक्षर लोगों, निरक्षर स्त्रियों और सताए हुए अछूतों के लिए है, तो सम्पर्क भाषा केवल हिन्दी ही हो सकती है।''

हिन्दी के माध्यम से आम आदमी को राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से जोड़ने का ही परिणाम था कि राष्ट्रीय आजादी को चाहने वालों, राष्ट्र के लिए मर–मिटने वाले लोगों की संख्या अब करोड़ों में हो गई। देश के लिए अपना सर्वस्व समर्पण त्याग व बलिदान की भावना से समूचा देश आंदोलित हो गया हिन्दी और स्वाधीनता आंदोलन दोनों के मिल जाने से इन दोनों का आधार राष्ट्रीय हो गया। अब स्वाधीनता के विचारों को पूरे भारतवर्ष में प्रत्येक प्रांत, प्रत्येक धर्म, प्रत्येक व्यक्ति तक हिन्दी के माध्यम से पहुंचाना आसान था।

राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी की भूमिका को पहचान कर ही राष्ट्रनायकों ने उसे राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित किया। उन राष्ट्रनायकों में स्वामी दयानंद सरस्वती, सुभाषचन्द्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, पुरुषोत्तम दास टंडन, राजेन्द्र प्रसाद आदि प्रमुख थे।

हिन्दी के महत्व को समझ कर ही स्वाधीनता सेनानियों ने उसके माध्यम से राष्ट्रीय विचारों को लोगों तक पहुंचाने के लिए हिन्दी पत्रकारिता को अपनाया। पं. मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, तिलक आदि सभी हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से जन–जागृति, समाज–सुधार, राष्ट्रीय चेतना, देश भक्ति आदि का कार्य करते रहे। 'मास' से कटकर महान से महान विचार भी अपने गंतव्य तक नहीं पहुंच सकता। इसलिए हिन्दी को 'मास' की भाषा समझकर मास को आंदोलित व संगठित करने का एक सशक्त माध्यम बना हिन्दी पत्रकारिता। हिन्दी आंदोलन और स्वाधीनता आंदोलन दोनों एक–दूसरे का हाथ पकड़कर आगे बढ़ते गए। हिन्दी का साहित्यकार और स्वाधीनता सेनानी

दोनों उसी राष्ट्रीय भावना को अपने–अपने तरीके से लेकर चलता। इस अर्थ में उस युग का साहित्यकार किसी स्वाधीनता सेनानी से कम नहीं है तो दूसरी तरफ उस दौर के स्वाधीनता सेनानी भी साहित्यकार की भूमिका में नजर आते हैं। इन दोनों वर्गों में रास्ते का भेद है, मनोभेद नहीं। दोनों का लक्ष्य एक ही है और वह है–राष्ट्रीय आजादी और राष्ट्रीय स्वाधीनता एकता व अखंडता। साहित्य और राजनीति उस दौर में एक मिशन था, प्रोफेशन नहीं। इसीलिए साहित्य भी उस दौर में राजनीति के आगे–आगे चलने वाली रौशनी थी जो आजादी का रास्ता दिखाते हुए बढ़ रही थी। और ये सफर तब तक चलता रहा जब तक भारत को 1947 में आजादी न मिल गई।

संदर्भ

1. बालमुकन्द गुप्त निबंधवाली, प्रथम भाग, पृ. 159.
2. आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद।
3. 'भारतेन्दु की पत्रकारिता' लेख (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र), पृ. 144.

Copyright © 2015, Dr. Meena Sharma. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.